ISSN : 2277-7865
Price : ₹ 50

तित्थयर

वर्ष : ३८ अंक : ०९ दिसम्बर २०१४

॥ जैन भवन ॥

KUSUM KUSUM KUSUM KUSUM KUSUM KUSUM KUSUM KUSUM KUSUM

KUSUM®

KUSUM
QUALITY PRODUCT

श्रीश्री नेमिनाथाय नमः

"ऐसा विश्वास दिल में जमाते चलो
सिद्ध, अरिहन्त को मन में रमाते चलो,
वक्त आयेगा ऐसा कभी न कभी
सिद्धि पायेंगे हम भी कभी न कभी"।

KUSUM CHANACHUR

Founder : Late Sikhar Chand Churoria

MANUFACTURED BY

K. K. FOOD PRODUCTS

A quality product of
Nakeen, Chanachur, Bhujia, Gathia etc.

Partners
Mr. Anil Kumar
Mr. Sunil Kumar Churoria

P.O.- Azimganj, Dist. Murshidabad
Pin- 742122, West Bengal
Mobile: 09734067986/9434060429
Phone No: 03483-253232, Fax No.: 03483-253566
E-mail ID : kusumchanachur@hotmail.com
azimganjsunil@gmail.com

ISSN 2277 - 7865

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्रिका

वर्ष - ३८ अंक - ०९ दिसम्बर २०१४

लेख, पुस्तक समीक्षा तथा पत्रिका से सम्बन्धित पत्र व्यवहार के लिय
पता - Editor : Titthayar, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Phone : (033) 2268-2655, 2272-9028,
Email : jainbhawan@rediffmail.com
Website : www.jainbhawan.in

विज्ञापन तथा सदस्यता के लिये कृपया सम्पर्क करें --
Secretary, Jain Bhawan, P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007
Life Membership : India : Rs. 5000.00. Yearly : 500.00
Foreign : $ 500

Published by Dr. Lata Bothra on behalf of Jain Bhawan from P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone : 2268-2655 and printed by her at Arunima Printing Works, 81, Simla Street Kolkata - 700 006 Phone : 2241-1006

संपादन

डॉ. लता बोथरा
पी-एच.डी., डी.लिट्

॥ जैन भवन ॥

Editorial Board :

1. Dr. Satyaranjan Banerjee
2. Dr. Sagarmal Jain
3. Dr. Lata Bothra
4. Dr. Jitendra B. Shah
5. Prof. Anupam Jash
6. Dr. Abhijit Bhattacharyya
7. Dr. Peter Flugel
8. Dr. Rajiv Dugar
9. Smt. Jasmine Dudhoria
10 Smt. Pushpa Boyd

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	लेख	लेखक	पृ. सं.
१.	जैन शिक्षा पद्धति की अध्यापन विधियाँ	साध्वी राजरश्मिजी	३५७
२.	आर्थिक क्षेत्र में अहिंसा की अवधारणा	श्रीमता कल्पना मुकीम	३६६
२.	यक्ष-यक्षी-प्रतिमाविज्ञान	डॉ. मारुति नंदन प्रसाद तिवारी	३८१
३.	सोने के कंगन		३८३

ISSN 2277 - 7865

कवरपृष्ठ : जैन मुनियों की मूर्तियाँ हाथ में ओघा लिए हुए
बौद्धों में ओघा का प्रचलन नहीं है।
(Fei lai feng caves China)

Composed by:
Jain Bhawan Computer Centre, P-25, Kalakar Street Kolkata - 700 007

जैन शिक्षा पद्धति की अध्यापन विधियाँ

जैन साध्वी राजरश्मिजी

भारतीय धर्म परम्परा मुख्य रूप से तीन भागों में विभक्त है। यथा–वैदिक परम्परा, बौद्ध परम्परा और जैन परम्परा। इन तीनों परम्पराओं की अपनी-अपनी मान्यताएँ है और अपना-अपना साहित्य भी है। इन तीनों परम्परा के अनुयायी अपनी-अपनी परम्परानुसार निर्धारित आधार का परिपालन करते हैं। जब शिक्षा पद्धति की बात करते हैं तो पाते हैं कि वह भी इनकी अपनी मान्यताओं के अनुरूप ही है। यहाँ हम इनकी शिक्षा पद्धतियों की चर्चा नहीं करेंगे और न ही सम्पूर्ण जैन शिक्षा पद्धति की बात करेंगे। प्रस्तुत आलेख में हम उन विधियों की चर्चा करेंगे, जिनके माध्यम से जैन शिक्षा पद्धति में अध्यापन किया जाता है।

शिक्षा के क्षेत्र में जैन विचारकों ने जिस पद्धति का विकास किया, वह अनुपम है। मानव व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास का उद्देश्य सामने रखकर जैनाचार्यों ने विभिन्न बौद्धिक स्तरों को ध्यान में रखकर शिक्षा विधियों का क्रम निश्चित किया। उन्हें अपने उद्देश्य की पूर्ति में जो सफलता मिली, उसका कारण उनके द्वारा लोक भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाना है। उन्होंने जीवन के चरम लक्ष्य **मोक्ष** को शिक्षा का केन्द्र बिन्दु मानकर जीव और जगत सम्पूर्ण ज्ञेयतत्त्व को शिक्षा का विषय बनाया। जड़ और चेतन के सम्पूर्ण अध्ययन का आध्यात्मिक और लौकिक शिक्षा के रूप में वर्गीकरण और लौकिक शिक्षा का चौसठ या बहत्तर कलाओं के रूप में अध्ययन शिक्षा के उत्तरवर्ती चरण है। जैन शिक्षा पद्धति में गुरु का महत्त्व, गुरु-शिष्य सम्बन्ध आदि विषयों पर भी गहराई से विचार किया गया है। हमारा उद्देश्य यहाँ अध्यापन विधियों की चर्चा करना है। इसलिए जैन शिक्षा पद्धति के अन्य पक्षों पर हम अभी विचार नहीं कर रहे हैं।

अध्यापन विधियाँ : तत्त्वार्थ सूत्र में आचार्य उमास्वामी ने दो विधियों का उल्लेख किया है।

तन्निसर्गादिधिगमाद्वा[1]– (1) निसर्ग विधि और (2) अधिगमविधि।

निसर्ग विधि : निसर्ग का अर्थ है स्वभाव। स्वयंप्रज्ञ व्यक्ति को गुरु और आचार्य द्वारा शिक्षा प्राप्त करने की अपेक्षा नहीं रहती। जीवन के विकास क्रम से वे स्वतः ही ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न विषयों को सीखते हैं। तत्त्वों का सम्यक बोध वे स्वतः प्राप्त कर जाते हैं। उनका जीवन ही उनकी प्रयोगशाला होता है। सम्यक् बोध और सम्यक् ज्ञान की उपलब्धियों को वे जीवन की प्रयोग शाला में उतारकर सम्यक्चारित्र को उपलब्ध करते हैं। यह निसर्ग विधि है।[2]

अधिगम विधि : अधिगम का अर्थ होता है पदार्थ का ज्ञान। दूसरे के उपदेश पूर्वक पदार्थों का जो ज्ञान होता है, उसे अधिगमज कहा जाता है। इस विधि के माध्यम से प्रतिभा सम्पन्न तथा आत्मप्रतिभा वाले सभी प्रकार के व्यक्ति तत्त्वज्ञान सम्यग्दर्शन का कारण बनता है।[3]

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है कि निसर्ग विधि में व्यक्ति की प्रज्ञा का स्फुरण स्वतः होता है उसे किसी गुरु की आवश्यकता नहीं होती जबकि अधिगम विधि में गुरु की उपस्थिति अनिवार्य है। गुरु के अभाव में जीवन और जगत् के तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त करना सम्भव नहीं है।

अधिगम विधि के निम्नानुसार भेद है :–

निक्षेप विधि : वक्ता द्वारा प्रयुक्त शब्द का नियम अर्थ क्या है, इसे ठीक रूप से समझ लेना जैन दर्शन की भाषा में निक्षेपवाद कहा जाता है। निक्षेप का लक्षण जैन दार्शनिकों ने इस प्रकार बताया है कि शब्दों का अर्थों में और अर्थों का शब्दों में आरोप करना अर्थात् जो किसी एक निश्चय या निर्णय में स्थापित करता है, उसे निक्षेप कहते हैं।[4]

निक्षेप विधि को इस प्रकार भी अभिव्यक्त कर सकते हैं कि लोक में या शास्त्र में जितना शब्द व्यवहार होता है, वह कहाँ किस अपेक्षा से किया जा रहा है, इसका ज्ञान निक्षेप विधि के द्वारा होता है। एक ही शब्द के विभिन्न प्रसंगों में भिन्न-भिन्न अर्थ हो सकते हैं। इन अर्थों

का निराकरण और ज्ञान निक्षेप विधि द्वारा किया जाता है। अनिश्चय की स्थिति से निकलकर निश्चय में पहुँचना निक्षेप है।[5]

निक्षेप विधि के चार भेद निम्नानुसार बताये गये हैं :

1) नाम, 2) स्थापना, 3) द्रव्य और 4) भाव / इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :-

1. **नाम निक्षेप :** व्यवहार की सुविधा के लिए वस्तु को अपनी इच्छानुसार जो संज्ञा प्रदान जाती है, वह नाम निक्षेप है। नाम सार्थक और निरर्थक दोनों प्रकार का हो सकता है किन्तु जो नामकरण केवल संकेत मात्र होता है जिसमें उस वस्तु की जाति, द्रव्य, गुण, क्रिया आदि की अपेक्षा नहीं होती, वह नाम निक्षेप है। निरक्षर व्यक्ति का नाम विद्या सागर और दरित्र का नाम लक्ष्मीपति रखा जा सकता है। नाम निक्षेप में जो उसका मूल नाम है उसी से पुकारा जाता है, उसमें पर्यायवाची शब्दों का कथन नहीं होता है।[6]

2. **स्थापना :** जो अर्थ तद्रूप नहीं है उसे तद्रूप मान लेना स्थापना निक्षेप है। अर्थात् एक वस्तु की अन्य वस्तु में कल्पना करना कि यह वह है, स्थापना निक्षेप कहा जाता है। स्थापना निक्षेप के दो भेद है– तदाकार स्थापना और अतदाकार स्थापना। इन्हें सद्भाव स्थापना और असद्भाव स्थापना भी कहते हैं। किसी वस्तु की उसी के आकार वाली दूसरी वस्तु में स्थापना करना सदाचार स्थापना है। जैसे शतरंज के मोहरों में घोड़ा, हाथी और ऊँट आदि मानना। जो उस आकार से रहित है कल्पना करना अतदाकार स्थापना है। नाम और स्थापना दोनों वास्तविक अर्थ से शून्य होते हैं।[7]

3. **द्रव्य निक्षेप :** अर्थात् व्यवस्था, भविष्यत् अवस्था और अनुयोग रूप ये तीनों विवक्षित क्रिया में परिणत नहीं होते, इसलिए इन्हें द्रव्य निक्षेप कहा जाता है। वाणी व्यवहार विचित्र होता है। किसी समय भूतकालीन स्थिति का वर्तमान में प्रयोग किया जाता है तो किसी समय भविष्य कालीन स्थिति का वर्तमान में प्रयोग होता है[8] जैसे कभी किसी घड़े में घी भी भरा जाता था। वर्तमान में वह खाली है। फिर भी उसे घी का घड़ा कहा जाता है। यह द्रव्य निक्षेप है।

इस विधि का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। द्रव्य निक्षेप के आगम द्रव्य निक्षेप और नो आगम द्रव्य निक्षेप ये दो भेद है। नो–आगम द्रव्य निक्षेप के तीन भेद– 1) ज्ञ-शरीर, 2) भव्य-शरीर और 3) तद्व्यतिरिक्त ये तीन भेद किये गये है।

जिस शरीर में रहकर आत्मा जानता था वह **ज्ञ**-शरीर या जायक शरीर है। एक पण्डित के मृत शरीर को देखकर यह कहा जाए कि यह ज्ञानी था, तो यह ज्ञ-शरीर नो-आगम द्रव्य निक्षेप का प्रयोग हुआ।

जिस शरीर में रहकर आत्मा भविष्य में जानने वाला है, वह भव्य शरीर है। जैसे एक बालक के विलक्षण शारीरिक लक्षणों को देखकर कहना कि यह महान योगी होगा, तो यह भव्य शरीर नो-आगम द्रव्य निक्षेप है।

प्रथम दो भेदों में शरीर ग्रहण किया जाता है। तीसरे भेद में शरीर नहीं अपितु शारीरिक क्रिया ग्रहण की जाती है अतः उसे तद्व्यतिरिक्त कहते हैं।[9] आगम द्रव्य निक्षेप में उपयोग रूप आगम-ज्ञान नहीं होता, लब्धि रूप (शक्ति रूप) होता है। नो आगम द्रव्य निक्षेपों में दोनों प्रकार का आगम ज्ञान नहीं होता, केवल आगम ज्ञान का कारण भूत शरीर होता है। नो-आगम तद्व्यतिरिक्त में आगम ज्ञान का पूर्ण रूप से अभाव होता है। इसे क्रिया की अपेक्षा से द्रव्य कहते हैं। यह तीन प्रकार का होता है–लौकिक, कुप्रावचनिक और लोकोत्तर।

1. लौकिक मान्यतानुसार श्रीफल मंगल है।
2. कुप्रावचनिक मान्यतानुसार विनायक मंगल है।
3. लोकोत्तर मान्यतानुसार ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप धर्म मंगल है।

इस प्रकार भाव शून्यता, वर्तमान पर्याय की शून्यता के उपरान्त भी जो वर्तमान पर्याय से पहचाना जाता है, यहीं इससे द्रव्यता का आरोप है, इसलिए इसे द्रव्य निक्षेप कहा हैं।[10]

4. भाव निक्षेप : वर्तमान स्थिति को ध्यान में रखकर वस्तु स्वरूप का ज्ञान कराना भाव निक्षेप है। दूसरे शब्दों में कहे तो शब्द के द्वारा वर्तमान पर्याययुक्त वस्तु का ग्रहण होना भाव निक्षेप है। इसके आगम और नो-आगम ये दो भेद हैं।

1. **अध्यापक :** अध्यापक शब्द के अर्थ में उपयुक्त हो तब वह आगम भाव निक्षेप से अध्यापक है।

2. क्रिया वृत्त ज्ञाता जो अध्यापन अध्यापक में प्रवृत है उसकी क्रियाएं नो-आगम से भाव निक्षेप है।

यहा **नो** शब्द देशवाची है क्योंकि यहाँ अध्यापक का क्रिया रूप अंश नो-आगम है। इसके भी तीन रूप है– 1. लौकिक, 2. कुप्रावचनिक और 3. लोकोत्तर।

नो-आगम तद्व्यतिरिक्त द्रव्य निक्षेप के लौकिक आदि तीन भेद बताये हैं और नो-आगम भाव के भी तीन रूप बताए हैं। इन दोनों में अन्तर यही है कि द्रव्य में **नो** शब्द सर्वथा आगम का निषेध बताता है और भाव में एक देश से निशेध बताया गया है। (नो शब्द के दो अर्थ है–सर्व-निषेध और देश निषेध) द्रव्य तद्व्यतिरिक्त का क्षेत्र केवल क्रिया है और भाव तद्व्यतिरिक्त का क्षेत्र ज्ञान और क्रिया दोनों हैं। शिक्षक हाथ आदि से संकेत करता है। पुस्तक के पृष्ठ पलटता है, यह क्रियात्मक अंश ज्ञान नहीं है, एतदर्थ भाव में **नो** शब्द देश निषेध वाची है। भाव निक्षेप का सम्बन्ध केवल वर्तमान पर्याय से ही है। अतः इस निक्षेप में द्रव्य निक्षेप की तरह ज्ञायक शरीर आदि भेद नहीं होते इन दोनों निक्षेपों में यही भेद हैं।[11]

5. प्रमाण विधि : आगम साहित्य में प्रमाण के सम्बन्ध में विस्तार से चर्चा हुई है। संशय आदि से रहित वस्तु का पूर्ण रूप से ज्ञान कराना प्रमाण विधि है। जीव और जगत का सम्पूर्ण एवं प्रामाणिक ज्ञान इस विधि के द्वारा प्राप्त किया जाता है। स्थानांग सूत्र में प्रमाण और हेतु इन दो शब्दों का प्रयोग हुआ है। स्थानांग में ही जहाँ पर हेतु शब्द का प्रयोग हुआ है वहाँ पर भी प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और आगम ये चार भेद मिलते हैं।[12]

कहीं-कहीं प्रमाण के तीन भेद भी पाये जाते हैं। वहाँ प्रमाण के स्थान पर व्यवसाय शब्द का प्रयोग हुआ है। व्यवसाय का अर्थ निश्चय है। निश्चयात्मक ज्ञान ही प्रमाण है। व्यवसाय के तीन प्रकार ये बताये गये है– प्रत्यक्ष, प्रात्यर्थिक और आनुगामिक।[13]

वैसे प्रमाण विधि के मूलतः दो भेद है– (1) प्रत्यक्ष प्रमाण और (2) अप्रत्यक्ष प्रमाण। पुनः प्रत्यक्ष के दो भेद है। (1) सांव्यवहारिक या इन्द्रिय प्रत्यक्ष और (2) पारमार्थिक या सकल प्रत्यक्ष / अप्रत्यक्ष के पाँच भेद है– (1) स्मृति (2) प्रत्यभि ज्ञान (3) तर्क (4) अनुमान और (5) आगम।[14]

प्रमाण पर शास्त्रों में विस्तार से चर्चा की गई है। यहाँ हमने संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है।

6. **नय विधि :** इस विधि के माध्यम से वस्तु स्वरूप का आंशिक विश्लेषण करके ज्ञान कराया जाता है। नय के मूल रूप से दो भेद है- (1) द्रव्यार्थिक और (2) पर्यायार्थिक। इन दोनों के भी पुनः सात भेद हैं।

(1) **नैगम :** संकल्प या कल्पना की अपेक्षा से होने वाला विचार।

(2) **संग्रह :** भेद सहित समस्त पर्यायों को अपनी जाति के अवरोध द्वारा एक मानकर सामान्य से सबको ग्रहण करना। उदाहरणार्थ घट कहने से सभी प्रकार के घटों का बोध होता है। इसे समूह की अपेक्षा से होने वाले विचार को ग्रहण करना भी कह सकते हैं।

(3) **व्यवहार :** संग्रहनय के द्वारा ग्रहण किये गये पदार्थों का विधिपूर्वक भेद करना। जैसे–स्वर्ण घट, रजत घट, मृतिका घट आदि।

(4) **ऋजु सूत्र :** वर्तमान पर्याय/अवस्था मात्र को ग्रहण करना।

(5) **शब्द :** यथाकाल, यथाकारक, शब्द प्रयोग की अपेक्षा से होने वाला विचार।

(6) **समभि रूढ़ :** शब्द की उत्पत्ति/भेद के अनुरूप शब्द प्रयोग करना। दोषों को दूर कर तदनुसार अर्थभेद की कल्पना करना।

(7) **एवं भूत :** वस्तु के कार्यानुरूप शब्द प्रयोग की अपेक्षा से होने वाला विचार।[15]

7. **अनुयोगद्वार विधि :** अनुयोग शब्द अनु और योग के संयोग से निर्मित हुआ है। अनु उपसर्ग है। यह अनुकूल अर्थवाचक है। सूत्र

के साथ अनुकूल, अनुरूप या सुसंगत अनुयोग है। लघु-सूत्र के साथ महान अर्थ का योग करना अनुयोग है।[16]

इस विधि के द्वारा तत्त्वों का विस्तृत ज्ञान प्राप्त किया जाता है। इस विधि के निम्नांकित छः भेद है।

(1) **निर्देश :** वस्तु के नाम का कथन करना।

(2) **स्वामित्व :** वस्तु के स्वामी के नाम को व्यक्त करना।

(3) **साधन :** जिन साधनों से वस्तु का निर्माण हुआ वे बताना।

(4) **अधिकरण :** वस्तु के आधार को स्पष्ट करना।

(5) **स्थिति :** वस्तु के काय को स्पष्ट करना।

(6) **विधान :** वस्तु के भेदों को स्पष्ट करना।[17]

8. **प्ररूपणा विधि :** प्ररुपणा विधि के निम्नांकित आठ भेद हैं–

(1) **सत् :** अस्तित्व बताते हुए समझाना।

(2) **संख्या :** भेदों की गिनती करके समझाना।

(3) **क्षेत्र :** वर्तमान काल सम्बन्धी निवास को ध्यान में रखते हुए समझाना।

(4) **स्पर्शन :** त्रिकाल सम्बन्धी निवास को ध्यान में रखते हुए समझाना।

(5) **काल :** समय की अवधि को ध्यान में रखते हुए समझाना।

(6) **अन्तर :** समय के अन्तर को ध्यान में रखते हुए समझाना।

(7) **भाव :** भावों को व्यक्त करते हुए समझाना।

(8) **अल्प बहुत्व :** एक दूसरे की अपेक्षा कम-ज्यादा का ज्ञान करके समझाना।

9. **स्वाध्याय विधि :** विशेष ज्ञान प्राप्त करने के लिए स्वाध्याय विधि का उपयोग किया जाता है। स्वाध्याय के अर्थ को पहले स्पष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है, यथा–

1. **सु+आ+अध्याय**= स्वाध्याय। **सु** यानि भली भाँति (सुष्ठु) **आ** *यानि मर्यादा के साथ, अध्ययन–श्रुत का विशेषतः अनुशीलन स्वाध्याय* है। निष्कर्षतः जिनेन्द्र प्ररूपित शास्त्र का एकाग्र चित्र से अध्ययन–पढ़ना स्वाध्याय है। अध्ययन से तात्पर्य उन शास्त्रों के पठन-पाठन से है जिनसे चित्त निर्मल होता है। या जिससे तत्त्व बोध, संयम व मोक्ष की प्राप्ति होती है।

2. **शास्त्रादि** का स्व+अध्याय। अपने लिये, अपनी आत्मा के लिए हितकारी अध्ययन करना **स्वाध्याय** है।

3. **स्व+अध्याय–** यानि **स्व** का, आत्मा का अध्ययन/आत्मा के आशय को पढ़ना, आत्मा के गुणों की खोज करने उन्हें जीवन में उतारना। इस प्रकार आत्मा के स्वाभाविक गुणों की (मननादि द्वारा) प्राप्ति ही वास्तविक स्वाध्याय है।

4. आलस्य त्यागकर ज्ञान की आराधना को स्वाध्याय कहते हैं।[18] **स्वाध्याय के प्रकार या भेद–** तत्त्वार्थ सूत्र में स्वाध्याय के पांच भेद बताये गये हैं (1) वाचना (2) पृच्छना (3) प्रतिपृच्छना (अनुप्रेक्षा) (4) आम्नाय और (5) धर्मोपदेश।[19]

व्याख्याप्रज्ञप्ति में भी पाँच भेद बताये गये हैं। यथा– (1) वाचना (2) पृच्छना (3) परिवर्तना (4) अनुप्रेक्षा और (5) धर्म कथा।[20]

(1) **वाचना :** निर्दोष ग्रन्थ तथा तत्प्रतिपादित अर्थ–इन दोनों के उपदेश का योग्य पात्र को प्रदान करना **वाचना** है। गुरु शिष्य को सूत्रादि की वाचना प्रदान करता है, शास्त्र पढ़ाता है। ग्रन्थ के अर्थ की प्ररूपणा करता है। शिष्य उसे ग्रहण करता है। इत्यादि वाचना के फलादि की भी चर्चा है।

(2) **पृच्छना :** अपने संशय को दूर करने के लिए प्रश्न पूछना पृच्छना है। शास्त्रों में इसका भी विस्तार से विवरण फल आदि मिलते है।

(3) **अनुप्रेक्षा :** अध्ययन किये हुए पाठ का मन से अभ्यास करना अर्थात् पुनः पुनः मन से विचार करते रहना, मन की स्थिरता के लिए वस्तु-स्वभाव एवं पदार्थ स्वरूप का या पूर्ण से हृदयसंगम श्रुत ज्ञान का परिशीलन पर्यालोचन, अनुप्रेक्षा है। अनुप्रेक्षा ग्रंथ व उसके अर्थ का मानसिक अभ्यास है न कि शाब्दिक। यही आम्नाय से इसका भेद है।

(4) **आम्नाय या परिवर्तना :** गृहीत ज्ञान को स्थाई बनाने के लिए किसी सूत्र का या पढ़े हुए शास्त्र का आचारविद व्रती कृति द्वारा स्वयं किया गया बार-बार शुद्ध पाठ परिवर्तना है।

(5) **धर्मकथा :** सर्वज्ञ प्रणीत अहिंसादि लक्षण रूप धर्म का कथन धर्म कथा है। इसे धर्मोपदेश भी कहा जाता है।[21]

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैन शिक्षा पद्धति की अध्यापन विधियाँ सभी प्रकार से उपयोगी है और वर्तमान समय में भी प्रासंगिक है।

संदर्भ ग्रन्थः

1. तत्त्वार्थ सूत्र 1/1
2. (1) निसर्ग : स्वभाव इत्यर्थः 1 यद्बाह्योपदेशहते प्रादुर्भवति तत्नैसर्गिकम। सर्वार्थ सिद्धि 1/3

   (2) श्री पुष्कर मुनि अभिनन्दन ग्रंथ पृष्ठ 7/51
3. अधिगमोऽर्थावबोधः। यत्परोपदेशपूर्वक जीवा अधिगमनिमित्त तदुत्तरम्। सर्वार्थसिद्धि-1/3
4. जैन दर्शनः स्वरूप और विश्लेषण पृष्ठ 280 आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि
5. श्री पुष्कर मुनि अभिनन्दन ग्रन्थ पृष्ठ 7/52
6. जैन दर्शन स्वरूप और विश्लेषण पृष्ठ 283-284
7. वही, पृष्ठ 284-285
8. वही पृष्ठ 285
9. वही पृष्ठ 285
10. वही पृष्ठ 286
11. वही पृष्ठ 286-287
12. स्थानांग 321-338
13. वही पृष्ठ 185
14. श्री पुष्कर मुनि अभिनंदन ग्रन्थ, पृष्ठ 7/52
15. श्री पुष्कर मुनि अभिनंदन ग्रन्थ, पृष्ठ 7/53

    (1) जैन दर्शन, स्वरूप और विश्लेषण, पृष्ठ 289-290
16. अनुयोग द्वार सूत्र : प्रस्तावना पृष्ठ 10 आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि
17. श्री पुष्कर मुनि अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ 7/53
18. जय गुंजार, अक्टूबर, नवम्बर, 1980 पृष्ठ 4/16
19. वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाम्नाय धर्मोपदेशः। तत्त्वार्थ सूत्र 9/25
20. व्याख्या प्रज्ञप्ति 25-7-801
21. जय गुंजार, अक्टूबर, नवम्बर 1980 पृष्ठ 4/17 से 25

(समाप्त)

आर्थिक क्षेत्र में अहिंसा की अवधारणा

श्रीमती कल्पना मुकीम

आधुनिक जीवन की मजबूत धूरी 'अर्थ' की प्रधानता है, इसे नकारा नहीं जा सकता। लेकिन 'अर्थ' ही सब कुछ है अन्यथा व्यर्थ है इस विचारधारा को समाज में वर्चस्वता प्राप्त हो जाना समस्याओं की जड़ हैं। धन का अभाव या अतिभाव, उभय रूप ही समस्याओं का जन्मदाता है। धन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्णता हेतु अभाव तो दूसरी ओर अतिभाव का विनिमय के समय दुरुपयोग कुल मिलाकर समस्याओं का पूँज।

मनुष्य के चार पुरुषार्थ कहे गये है यथा– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। प्रथम तीन भौतिक वा इहलौकिक जगत् की सामाजिक आचार संहिता है जबकि मोक्ष शुद्ध आत्मिक वा आध्यात्मिक पुरुषार्थ है जिसमें केवल चेतना का शोधन ही एकमात्र ध्येय रहता है। ऐसा होना पूर्ण अहिंसा हैं।

अन्तिम तीन पुरुषार्थ का लक्ष्य उनके नाम में निहित है, लेकिन प्रथम पुरुषार्थ धर्म का अर्थ जब समाज व्यवस्था के संचालन का विधि-विधान इस अपेक्षा से लिया जाता है तब वह अर्थ और काम से जुड़ा होता है तथा जब आत्मिक पुरुषार्थ के अर्थ में आता है तो वह मोक्ष से जुड़ जाता है।

उपरोक्त चार पुरुषार्थ मानव-भव के सर्वांगीण पहलुओं से जुड़े होते हैं अतः जितनी भी समस्याएँ, समाज का दूषित वातावरण, वैयक्तिक अधःपतन, अपराध, दिन-ब-दिन गिरता हुआ वैचारिक स्तर किसी भी समस्या का शाश्वत समाधान आदि सभी में इनका ही योगदान है।

आर्थिक क्षेत्र से सम्बन्धित समाज में फैलने वाली समस्याएँ और निराकरण स्वरूप समाधान अहिंसा। प्रत्येक क्षेत्र में मानव का सदा से भौतिक रूपेण लक्ष्य रहा हैं। इस लक्ष्य को साधने हेतु विभिन्न नीतिया

को मानव अपनाता आ रहा है। आज के भौतिक जीवन स्तर में हुई अभिवृद्धि अर्थनीति के अन्तर्गत आती हैं। 'भरपूर उत्पादन आकंठ उपभोग' इस सूत्र के क्रियान्वित होने के साथ उत्पादन वितरण एवं उपभोग सभी क्षेत्रों में अभूतपूर्व उन्नति समक्ष हैं, जैसे–दूरसंचार, परिवहन प्रत्येक इच्छापूर्ति में यंत्रों की प्रधानता आदि।

भौतिक दृष्टि से सुविधा समृद्धि विलासिता को ही सम्पन्नता का पैमाना माना जाता है जिसमें होने वाले राष्ट्रीय आय की वृद्धि अर्थ शास्त्र के अनुसार विकास की सूचक हैं। आवश्यकताओं में वृद्धि अर्थशास्त्रियों का लक्ष्य है।

अर्थशास्त्र के अन्तर्गत आवश्यकताओं के वृद्धि विस्तार में राष्ट्र का हित समाहित है। अर्थशास्त्री मानते है आर्थिक आवश्यकता से अधिक उत्पादन, अधिक उत्पादन से बढ़ती आबादी हेतु रोजगार, रोजगार से गरीबी नष्ट, गरीबी नष्ट होने से धनाढ्यता में वृद्धि, धनाढ्यता से जीवन स्तर उन्नत, जीवन स्तर उन्नत होने से विज्ञान एवं तकनीकी विकास को प्रोत्साहन, इस प्रोत्साहन के प्राप्त होने से प्रकृति पर मानव का एक मात्र प्रभुत्व।

इस विचार धारा के तहत मानव की इच्छाओं को बढ़ावा देने हेतु प्रचार-साधन जैसे विज्ञापन, जन-प्रचार, व्यक्तिगत आय हेतु प्रोत्साहन आदि। इससे जो प्रणालियाँ प्रभावित हो रही है कुछ व्यक्ति अथवा राष्ट्र के हित में उचित होते हुए भी अति की सीमा में प्रवेश करने से अनुचित बनती जा रही हैं। प्रणालियों जैसे निजीकरण, स्वचलितकरण, शस्त्रीकरण, वैश्वीकरण, तकनीकीकरण, यान्त्रिकीकरण आदि तथा इसके तहत उपभोक्तावाद, महा उद्योग विदेशी कम्पनियों को बढ़ावा, आयात-निर्यात आदि। यानि कुल मिलाकर सार भाग निष्पन्न हुआ– इच्छाओं को बढ़ाओं ताकि आवश्यकताएँ बढ़े तथा उनके बढ़ने से भोग का बाजार बढ़े जिससे भोग पूर्ति के प्रयास बढ़ने से उत्पादन वृद्धि होगी जो राष्ट्रीय विकास के मार्ग को अवरुद्ध न होने देगी।

इस प्रकार अर्थनीति के आकर्षण का जाल फैलाकर आर्थिक चक्रव्यूह में व्यक्ति जकड़ लिया जाता है। परिणाम असंतुलित जीवन.

अनुचित प्रतिस्पर्धा, आर्थिक विषमता, अपव्यय, अर्थ की गुलामी, पशुधन में कमी, प्राकृतिक धन जैसे जंगल, नदी वातावरण की दुषितता, दुष्कर्म को बढ़ावा, सीमाहीन उपभोग, भ्रष्टाचार, शोषण, असंतोष, मानसिक अवसाद, शारीरिक विकार, नैतिक मूल्यों का ह्रास, अशांति, अमानवीय व्यवहार की पराकाष्ठा रूप दानवीय कार्य जैसे–बाल श्रमिक, वेश्यावृत्ति, नकली नोट, नकली पंजीयन, नकली दवाइयों, तस्करी, आतंकवाद, अपहरण, पूँजीबाजार, कुव्यसन, धूम्रपान, मदिरापान, मॉंस सेवन, जुआ, सट्टा आदि। यह सब अस्त-व्यस्त, सीमाहीन, संतुलन रहित अर्थनीति के परिणाम हैं।

अर्थात् मानवीय व्यवहार के आर्थिक पहलू से जुड़ा-सलंग्न प्रत्येक प्रत्यक्ष वा परोक्ष संदर्भ यहाँ समाविष्ट है, निहित हैं। सर्वप्रथम इनका आधार आजीविका अर्थात् अर्थो पार्जन हैं।

आजीविका-जीवन यापन का माध्यम क्या है? यह प्रत्येक व्यक्ति की अपनी सोच पर निर्भर होता हैं। अच्छे व बुरे किस दिशा की ओर जाना यह व्यक्ति स्वयं निर्धारित करता हैं। निर्धारण के मुद्दे की ओर गौर-दृष्टि क्षेप व्यक्ति की नैतिक व अनैतिक, वैधानिक या अवैधानिक मंशा को उजागर करता हैं। कैसे?–

मनुष्य के सामाजिक जीवन का मुख्य आधार 'अर्थ' अर्थात् 'वित्त' हैं। आधार रूप अर्थ या वित्त लक्ष्य प्राप्ति का एक साधन है। साधन को साधन मानकर हासिल करने की क्रिया नैतिक व वैधानिक हो सकती है तथा समाज में सामंजस्य को भी स्थान देती है, शोषण का विरोध करती है लेकिन शनैः शनैः वह साधन से साध्य की ओर सन्मुख होती है तब वहाँ से हिंसा का अविर्भाव होता है, जो समस्याओं का अनिवार्य रूप से जनक होता है 'अर्थ' साधन अथवा साध्य? इसका निर्धारण कैसे हो? इसी में अर्थ शास्त्र की नीति के वैधानिक और अवैधानिक पहलू स्पष्ट होते हैं।

'अर्थ' साधन है किसका? आवश्यकता पूर्ति का। आवश्यकता किसे कहते है? जीवन जीने के लिए जरूरी साधनों की पूर्ति जैसे-रोटी, कपड़ा और मकान लेकिन प्रत्येक मनुष्य इहलौकिक आराम

चाहता है और सुख सुविधाओं की दौड़ का हिस्सा बनता है। शनैः शनैः वह उसके लिए आवश्यकता ही हो जाती है जैसे– आधुनिक विज्ञान की देन यथा– मोबाईल, कम्प्यूटर, वातानुकूलक रेफ्रीजरेटर आदि। इससे भी आगे जाकर वह उपभोग परिभोग में रचा-पचा और अधिक सम्पन्नता का विचार करता है तब विलासिता भी उसकी आवश्यकता बन जाती हैं। आवश्यकता पर किया गया दृष्टिक्षेप उसे तीन विभागों में विभाजित करता है, वितरित करता है। यथा– अत्यावश्यक, आवश्यक व अनावश्यक।

अत्यावश्यक : यानि अनिवार्य जैसे–भोजन, वस्त्र, आवास, चिकित्सा, शिक्षा आदि।

आवश्यक : यानि अनिवार्य नहीं होने पर भी सामान्य जीवनोपयोगी जैसे– पंखा, पलंग, सामान्य वाहन, दुकान आदि।

अनावश्यक : बेश कीमती वस्त्र, हवेली, आभूषण, सौन्दर्य, प्रसाधन, मादक द्रव्य, विलासिता के अन्य साधन आदि।

इस प्रकार आवश्यकता का स्तर मंद-मध्यम-तीव्र अथवा प्राथमिक उच्च, सर्वोच्च होता है। इन्हें ही युवाचार्य महाप्रज्ञ ने भोग, आवश्यकता तथा इच्छा इन हिस्सो में बांटा हैं वे कहते हैं–

अर्थशास्त्र के अनुसार[1] मांग से आवश्यकता का क्षेत्र बड़ा होता हैं। इच्छा का क्षेत्र उससे भी बड़ा होता है अथवा इच्छा से आवश्यकता का क्षेत्र संकुचित और मांग का क्षेत्र उससे भी संकुचित होता है।

मांग : उस आवश्यकता को कहते है जिसकी संतुष्टि की जा चुकी है।

आवश्यकता : मनुष्य की उस इच्छा को कहते है जिसको पूरा करने के लिए उसके पास पर्याप्त-यथेष्ट धन हो और साथ ही वह मनुष्य उस धन को खर्च करने के लिए तैयार भी हो।

इच्छा : कमी समाप्त न होने वाली तृष्णा। भगवान महावीर का कथन है– 'इच्छा आकाश के समान अनन्त है।' तथा लाभ से लोभ बढ़ता है, जैसे-जैसे लाभ होता हैं वैसे-वैसे लोभ बढ़ता हैं।

---

1. सत्य की खोज अनेकान्त के आलोक में, लेखक– युवाचार्य महाप्रज्ञ, चतुर्थ संस्करण नवम्बर 1992, तुलसी आध्यात्म नीडम् प्रकाशन, पृष्ठ-25

'अर्थ' का साधन रूप, उपयोग सीमा का उल्लंघन ही उसे साधन से साध्य बनाता है। मूलभूत आवश्यकता पूर्ति में वह साधन होता है, सुख सुविधा की चाहत में वह साध्य के बीज रूप होता है तथा विलासिता भोगवाद में अर्थ अतिरिक्त की परिधि में प्रवेश कर जाने से साधन से परे अन्तहीन केवल और केवल साध्य होकर रह जाता है। साध्य के बीज रूप में हिंसा का प्रारम्भ व साध्य रूप में अनाचार अर्थात् हिंसा का वीभत्स रूप समस्याओं का ढ़ेर लेकर समक्ष आता है।

आवश्यकता 'अविष्कार की जननी है' इसे मद्देनजर रखते हुए अर्थशास्त्र की नीति कहती है आवश्यकताओं का विस्तार करो, क्योंकि इसमें समाज की आर्थिक प्रगति समाहित हैं। समाज शास्त्र की अपेक्षा से आवश्यकताओं का विस्तार मानव की सुख सुविधा के विकास को ध्यान में लेकर कहा हैं। व्यक्तिवाद की अपेक्षा से आवश्कताओं का विस्तार उसे अर्थ की असीमित स्वतन्त्रंता देकर भोग विलास की ओर ढ़केलता हैं।

आवश्यकताओं के तीन स्तर उसके परिमाण के अनुपात में प्राथमिक-माध्यम-उच्चतम जिसे अनुक्रम से हम भोग-आवश्यकता-इच्छा कह सकते हैं। अर्थ के महत्व से तीन विचार धाराएँ यथा भौतिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक जुड़ी हुई हैं।

भौतिक प्रगति का सशक्त साधन अर्थ है इस आशय से उसे सर्वापरि स्थान देना भौतिक विचारधारा में निहित हैं।

अर्थ सामाजिक जीवन को सुचारु व सुगठित बनाने का अनिवार्य साधन है यह नैतिक विचार धारा से सम्बद्ध है फिर भी यह धर्म रूपी अंकुश से नियन्त्रित होने के महत्त्व को नकारती नहीं हैं।

मानव जीवन में अर्थ को सर्वोपरि स्थान अथवा अनिवार्यता रूप नहीं मानने वाली आध्यात्मिक विचारधारा उसे अपवर्ग का मार्ग प्रशस्त होते तक एक साधन के रूप में स्वीकारती है जिससे अन्ततः बरी होने का निर्देश भी सख्ती के साथ देना आध्यात्मिक विचार धारा के अन्तर्गत हैं।

यह तीनों स्तर एवं धाराएँ अन्ततोगत्वा अर्थशास्त्र से जुड़ी है तथा अर्थ का सरसरी निगाह में वर्गीकरण करती है।

मीमांसा का यह कोण अपनाने के पश्चात् आर्थिक क्षेत्र से उत्पन्न समस्या, असंतोष का सिलसिला चलता है। मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु धन की उपलब्धि समाधान देती हैं। मूलभूत धन के उपरान्त अधिक धन एक के बाद एक आवश्यकताओं को सुख सुविधा में परिवर्तित कर समस्याओं का निर्माण करता हैं। अपरम्पार धन असंतोष पैदा करता है। मूलभूत आवश्यकता हेतु धन का अभाव मानवीय व राष्ट्रीय दृष्टिकोण से एक कलंक है।

समाज अथवा राष्ट्र में प्रधानता किसकी है? अर्थात् किस मूल्य की प्रबलता है? उसकी बिना पर वहाँ का माहौल होता हैं। राष्ट्र धर्म प्रधान है या अर्थ प्रधान? जिस भी मूल्य की प्रबलता हो वह दूसरे मूल्य को बाधित किये बिना नहीं रहता। जब युग, धर्म प्रधान था तब नैतिक मूल्यों का आधिपत्य आर्थिक मूल्यों को गौण करता था। लेकिन आज विश्व अर्थ प्रधान हो गया है तथा यह नैतिक मूल्यों को बाधित करता है परिणाम स्वरूप अनैतिकता के प्रति यह ग्लानि उत्पन्न ही नहीं होने देता, जिससे प्रतिष्ठा-हानि होती है, धार्मिक मूल्यों का स्तर नीचे गिरता है। अर्थ की आकांक्षा गलत नहीं है। आकांक्षा जब सीमा का अतिक्रमण करती है तब लोभ का ताण्डव प्रारम्भ होता है। (लोभ-हिंसा के विवेचन में देखें।)

अर्थ का बोलबाला मानव को दिन-व-दिन अर्थ-अर्जन और संचय के ध्येय की ओर धकेलता है जो मानसिक नियंत्रण को शिथिल करता है तब यह सोच पुख्ता होती है कि नैतिकता से यह इतने प्रमाण में हासिल नहीं हो सकता। ऐसी सोच जब धारणा का रूप ले लेती है तब वह प्रलोभन का शिकार होकर नैतिक-अनैतिक को भेद रेखा को भी पार कर जाता है। एक के बाद एक समस्याओं का प्रारम्भ यहीं से होता हैं।

मानसिक तनाव, रिश्वत खोरी, भ्रष्टाचार, चोरी आदि कुव्यसन, नारी शोषण, बाल श्रमिक, पूँजी बाजार, औद्योगिकरण, केन्द्रीकरण, सामाजिक विषमता, प्रतिस्पर्धाओं की दौड़, शस्त्रीकरण, युद्ध, स्वैराचार जैसी अनेकानेक समस्याएँ आदि असामाजिक तत्त्व अपना सिक्का जमाते चले जाते हैं।

समस्याओं का समाधान-निराकरण कैसे हो? इसके लिए भी दृष्टि की तरतमता होनी चाहिए। दृष्टि क्रमिक व समग्र हो तो हल निकाला जा सकता है तथा क्रियान्वित किया जाय तो समस्याओं का उन्मूलन भी हो सकता हैं। आज की समस्याओं के कारण क्या है? उपाय-समाधान ज्यादा कारगर व्यक्ति से समाज या समाज से व्यक्ति की ओर जाने पर साबित हो सकते हैं? किस हद तक समाज की आचार-परम्परा (नीतिशास्त्र) से तो कहीं वैधानिकता से सुधार हो सकता है? कहाँ समाज के विभिन्न वर्गों के एकत्रीकरण से समाधान पुख्ता हो सकता है? व्यक्ति से लेकर विश्वस्तरीय पैमाने पर हो गये समाधान में पुनः वहीं समस्या उत्पन्न न हो इसकी सजगता तथा विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित समस्याओं का एक दूसरे के क्षेत्र में होता आरोपण अर्थात् विभिन्न क्षेत्रों की कार्य प्रणाली में सामंजस्य आदि अनेक पहलुओं से समस्याओं पर किया गया विचार जब आचार में परिवर्तित होगा तब शनैः शनैः समस्याएँ समाधान का रूप लेगी।

आधुनिक अर्थनीति में धन साधन न रहकर साध्य बन गया। क्यों? भौतिकवाद। जब तक इसके साथ नैतिकता तथा आध्यात्मिकता का लगाम नहीं होगा तब तक मानव मृग मरीचिका का शिकार होता रहेगा। लक्ष्य रहित, अन्तहीन दौड़ बेलगाम-निरंकुश-अविराम जारी रहेगी। समस्याओं का तांता जारी रहेगा। इसका समाधान किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। इस संदर्भ में अर्थ का उद्देश्य जानना आवश्यक है। अर्थापार्जन का उद्देश्य– अर्थोपार्जन के प्रमाण का लक्ष्य व्यक्ति की भूमिकानुसार निर्धारित होना चाहिए। ताकि वर्तमान तथा अनागत के लिए 'अर्थ' अनर्थ के हेतु नहीं बल्कि व्यक्ति के साथ-साथ समाज व राष्ट्र के भी चरित्र निर्माण में सहायक हो तभी अर्थ साधन बना रह सकता है।

अर्थोपार्जन के दौरान विभिन्न सम्पर्क जैसे– परिवार के सदस्य, अधिनस्थ कर्मचारी आदि का शोषण, प्राकृतिक संसाधनों का अतिदोहन आदि ना हो ताकि परस्पर मैत्री भाव व सामंजस्य बना रहें।

अर्थापार्जन सुख का हेतु है इस भ्रामकता से परे जाकर निर्धारण आवश्यकता पूर्ति का हेतु है, इस सिद्धान्त के तहत अर्जन करना चाहिए।

अर्थोपार्जन का उद्देश्य इतनी सीमा तक होना चाहिए जहाँ व्यक्ति की स्व निर्भरता, हक, आदर, स्वातन्त्र्य, अमन, खुशी, रक्षा, राहत, संतुष्टि, आराम, आनंद, सुविधा आदि में बाधा भी न पड़े तथा न ही कोई दखल अंदाजी हस्तक्षेप कर पाएँ। अर्थापार्जन करना भार न बने।

अर्थोपार्जन करने वाले व्यक्ति की स्वयं की हाय-हाय तृष्णा अथवा परिवार के अन्य सदस्यों की ओर से डाला गया अतिरिक्त भार दोनों ही अर्थ को अनर्थ अथवा साधन से साध्य बनाते हैं। इसे ही दूसरे शब्दों में बाह्य परिवेश से मिलने वाले निमित्त को दोषी बताकर स्वयं के अन्तरंग के लोभ को वेष्टीत करना, ढंकना कहते हैं जिससे व्यक्ति पतन की गर्त में डूबता चला जाता है। अर्थात् नाना प्रकार के परिग्रहों की दलदल में फंसता जाता है। आखिर यह परिग्रह है क्या? गौर करें।

परिग्रह : परिग्रह का अर्थ है किसी वस्तु के प्रति ममत्व भाव। आगम में कहा है– 'मुच्छा परिग्गहो वुत्तो'[1] मूर्च्छा परिग्रह है। परिग्रह वृत्ति धन आकर्षण का मुख्य बिन्दु है। मूर्च्छा अथवा ममत्व भाव के अतिरिक्त सम्पूर्ण चराचर विश्व में परिग्रह के अंतर्गत किसी का भी समावेश नहीं किया गया है। विश्व में केवल दो प्रकार के द्रव्य है, जड़ और चेतन। इन दोनों के प्रति आकर्षण का भाव परिग्रह है जो दुःखों का कारण व समस्याओं का मूल हैं। आंकाक्षा, अपेक्षा, गृद्धि, आसक्ति, तृष्णा, लालसा का उत्पन्न होना हैं। यह मूर्च्छा कहाँ अथवा किसके प्रति उत्पन्न होती है?

कतिपय बिन्दु : चेतन की अपेक्षा से शरीर के प्रति मम भाव तथा आत्मा की ओर दुर्लक्ष, जड़ की अपेक्षा से वस्तु के प्रति यह मान्यता रखना की वह मेरी है, मैं मालिक हूँ, मैं ही भोग सकता, चाहे रखूं या नष्ट करूं अधिकारी केवल मैं हूँ। मूर्च्छा से वशीभूत संचय करता जाता हैं। ऐसा संचय ही परिग्रह हैं।

परिग्रह के दो भेद हैं– 1. अंतरंग परिग्रह तथा 2. बाह्य परिग्रह। अथवा भाव परिग्रह और द्रव्य परिग्रह। अन्तरंग परिग्रह चौदह प्रकार[2]

---

1. सचित्र प्रश्न व्याकरण सूत्र, प्रधान संपादक–श्री अमर मुनिजी, प्रकाशक–पद्म प्रकाशन, प्रथम आवृत्ति 2008, मई, पृष्ठ - 225
2. वही पृष्ठ - 225-226

का हैं– 1. मिथ्यात्व, 2. राग, 3. द्वेष, 4. क्रोध, 5. मान, 6. माया, 7. लोभ, 8. हास्य, 9. रति, 10. अरति, 11. शोक, 12. भय, 13. जुगुप्सा तथा 14. वेद।

मिथ्यात्व : आत्मा का विकारी भाव जो आत्मा को कलुषित कर जीव को मूर्च्छा भाव से संलग्न रखता है।

राग : जड़ व चेतन के प्रति आकर्षण का भाव रखता है।

द्वेष : जड़ व चेतन के प्रति द्वेष का भाव रखता है।

क्रोध : अक्षमा का भाव रखता है।

मान : अहंकार का भाव रखता है।

माया : छल, कपट करना।

लोभ : लालच से परे नहीं रहना।

हास्य : हँसी मजाक में रस लेना।

रति : पदार्थों में प्रीति रखना।

अरति : पदार्थों में अप्रीति रखना।

शोक : जो हो वा जो बीत चुका उसके प्रति आर्त्त व रौद्र ध्यान।

भय : अनागत की आशंका में डूबे रहना।

जुगुप्सा : घृणा, नफरत व तिरस्कार दृष्टि रखना।

वेद : पुरुष-मैथुन, स्त्री-मैथुन, उभय-मैथुन की कामना क्रमशः स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद में बने रहना।

चौदह प्रकार के अन्तरंग परिग्रह व्यक्ति में बाहर से दृष्टिगोचर हो या न हो अन्तर में सुप्त अवस्था में चोर की भाँति छिपे होते हैं।

बाह्य परिग्रह : अन्तरंग में उत्पन्न इन्हीं कारणों से बाह्य वस्तुओं जैसे शरीर, वस्त्र, धन, स्त्री, आदि के प्रति रहा हुआ ममत्व भाव जागता है तथा वे सब बाह्य परिग्रह बन जाते हैं। शास्त्र में बाह्य परिग्रह के निम्नोक्त दस प्रकार[1] बताये गये हैं–

1. **क्षेत्र :** खेत आदि खुली भूमि।
2. **वस्तु :** रहने के भवन आदि।
3. **हिरण्य :** चाँदी आदि के सिक्के।

---

1. सचित्र प्रश्न व्याकरण सूत्र, प्रधान संपादक–श्री अमर मुनिजी, प्रकाशक–पद्म प्रकाशन, प्रथम आवृत्ति 2008, मई, पृष्ठ - 226

4. **सुवर्ण :** सोना (सोने के आभूषण आदि)।

5. **धन :** हीरा, पन्ना, मणि, मोती, रुपया, पैसा आदि।

6. **धान्य :** गेहूँ, चावल आदि अनाज।

7. **द्विपद :** चतुष्पद- दो पैर वाले मनुष्य तथा चार पैर वाले गाय, भैंस आदि पशु।

8. **दासी-दास :** नौकर-चाकर, सेविकाएँ आदि।

9. **कुप्य :** सोने-चाँदी के अतिरिक्त वस्त्र, बर्तन, अलमारी आदि सभी प्रकार का समान।

10. **धातु :** ताँबा, लौह आदि धातु।

भाव एवं द्रव्य से परिग्रह की ओर जो आकर्षित होता जाता है वहाँ परस्पर विनिमयाभाव रूप हिंसा और समस्याएँ उत्पन्न होती है। अर्थोपार्जन रूपी पुरुषार्थ में भी अंतिम हेतु मोक्ष का पुरुषार्थ ही है इस ओर की सर्वाधिक प्राथमिकता को भुलाकर भौतिकवाद को सर्वे-सर्वा मानकर इसी से लिपटता जाता हैं। अर्थात् मोक्ष हेतु आत्मा की, भव भ्रमण से बचाव हेतु कर्म और शरीर (साधन होने की बात ही भूल जाता है) की उपेक्षा कर अर्थोपार्जन में डूब जाता है।

अर्थोपार्जन करते हुए ध्यान रखने योग्य बिन्दु :- अर्थोपार्जन करने वाले व्यक्ति में उपरोक्त वर्णित अन्तरंग परिग्रह पर उचित अंकुश की आवश्यकता होनी चाहिए ताकि पाप कर्मों के अर्जन से यथा संभव बचने का प्रयास किया जा सके। शरीर रूपी साधन, साधन के रख-रखाव अर्थात् स्वास्थ्य लाभ का ही केवल अधिकारी होना कि विलासिता अथवा भोगवाद का शिकार हो। बाह्य परिग्रह में उपरोक्त कथित परिग्रहों की सीमा-मर्यादा का उल्लंघन न हो अर्थात् लाभ प्राप्त होने पर अप्रयोजन भूत (सीमा बाह्य) का लोभ सवार ना हो।

आन्तरिक व बाह्य परिग्रह के मध्य कारण-कार्य व्यवस्था स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है। विश्व में कोई भी कार्य बिना कारण के होता नहीं अर्थ से उत्पन्न समस्या रूपी कार्य के कारण कौन से हैं? यह विचारने पर आन्तरिक परिग्रह रूपी बिना पर या आधार पर बाह्य परिग्रह रूपी निष्पत्ति होने पर ही समस्याएँ निर्माण होती है यह समझना अत्यन्त सरल हैं।

इन्हीं सभी मुद्दों को मद्देनजर रखते हुए भौतिकवाद को नैतिकता तथा आध्यात्मिकता की डोंर से बाँधकर समस्याओं का ढ़ेर जड़ से उत्पन्न न हो इस ओर आकर्षण का केन्द्र बने भगवान महावीर। अर्थात् वर्तमान शासन पति भगवान महावीर का कथन हिंसा समस्याओं की जड़ व समाधान केवल अंहिसा, अत्यन्त सार्थक है। विचार इस ओर ही आकर्षित करते हैं, यथा–

त्रिलोक से त्रिकाल तक, आगत से अनागत तक कारण है,
हिंसा हिंसा और हिंसा।
कल्पना से यथार्थ तक, ऋषभ से महावीर तक निदान है,
अहिंसा अहिंसा और अहिंसा।।

विश्व के प्रत्येक क्षेत्र में उत्पन्न होने वाली समस्या किसी न किसी मानसिक, वाचिक, कायिक हिंसा से स्वतन्त्रतः अथवा संलग्नतः सम्बद्ध-जुड़ी होती है। विश्व की ऐसी कोई समस्या नहीं जिसका समाधान भगवान महावीर के सिद्धान्तों से संभव नहीं। यह केवल कथन नहीं, इसके पार्श्व में सबसे बड़ी ओर ठोस वजह यह है कि भगवान महावीर स्वामी ने[1] सर्वज्ञ बनने के पश्चात् यथार्थवाद को जनता के सामने रखा जो अहिंसा के रूप में सामने आया। हिंसा को असमाधि और अहिंसा को समाधि जानकर उन्होंने जनता को उपदेश दिया।

मानसिक अहिंसा के लिए अनेकान्त दृष्टि और वाचिक अहिंसा के लिए स्याद्वाद भगवान महावीर की गतिविधि के स्त्रोत बने। उन्होंने सब जीवों को आत्म तुल्य समझने को कहा। मानव जीवन के व्यवहारिक पक्ष में अर्थ की आवश्यकता स्वीकार करने के बावजूद जैसा कि हमने पूर्व में भी उल्लेख किया कि अपरिग्रह आर्थिक पहलू है, जिसके प्रति सावचेतता ही मनुष्य को अहिंसा से बांधे रखती है। अपरिग्रह रूपी आर्थिक संदर्भ में सावचेतता बनाये रखने के लिए परिग्रह परिमाण व्रत का मार्ग भगवान महावीर ने जनता के सामने रखा। न्यायोपार्जित धन मार्गानुसारी श्रावक के 35 गुणों में से एक है जो परिग्रह परिमाण व्रत का पोषक है।

---

1. तित्थयर-1 अप्रैल 1997, पृष्ठ - 67

परिग्रह परिमाण व्रत : अठारह पाप स्थानकों के अन्तर्गत परिग्रह को पाप की कोटि में रखा गया है। इस पाप से मुक्त साधु-श्रमण अपरिग्रह व्रत का पालन करते हैं। गृहस्थों के लिए इस पाप से मुक्ति हेतु परिग्रह परिमाण-व्रत का निर्देश दिया गया हैं, क्योंकि गृहस्थ पूर्णतः अपरिग्रही होकर नहीं रह सकता, उसे उसकी भूमिका अनुसार अर्थ (परिग्रह) की आवश्यकता होती है। कहावत है[1]-

'साधु कौड़ी रखे तो कौड़ी का और गृहस्थ के पास कौड़ी न हो तो कौड़ी का।'

हिंसा से लिप्त समस्याओं का पूंज परिग्रह का दुष्परिणाम हैं। इच्छाएँ बिन पाल का सरोवर हैं। इससे सुरक्षा, इच्छा रूपी सरोवर को परिमाण रूपी पाल बांधकर की जा सकती हैं।

जैन दर्शन में एक शब्द का उल्लेख आता है– 'प्रत्याख्यान'। व्यवहारिक भाषा में इसका अर्थ शपथ पूर्वक त्याग की अपेक्षा हैं। विश्व में जितने भी परिग्रह है उनमें से जितने की इच्छा है उसके अतिरिक्त सभी का प्रत्याख्यान अथवा शपथ पूर्वक त्याग, परिग्रह परिमाण अणुव्रत कहलाता हैं। जैन दर्शन के अनुसार कोई भी व्यक्ति जब तक ऐसा प्रत्याख्यान नहीं करता तब तक संपूर्ण विश्व के परिग्रहों की क्रिया (उसके निर्माण व व्यवहार प्रयोग से होने वाली हिंसा का दोष) उसके उपयोग अथवा संग्रह न करने के बावजूद भी लगती हैं।

प्रत्याख्यान पूर्वक सीमित किया जाने वाला परिमाण प्रत्येक व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर होता है अतः उसके स्वतन्त्रता पर सिवाय उसकी स्वयं की इच्छा के किसी ओर का अंकुश नहीं होता, जो कि आवश्यक हैं क्योंकि कहा है– 'तृष्णायां परमं दुःखम्।'[2] अर्थात् तृष्णा परम दुःख का कारण है। अथवा 'तृष्णा गुरुजी बिन पाल सरोवर'[3] अर्थात् जैसे बिना पाल के तालाब में कितना भी पानी आ जाय, फिर भी वह भरता नहीं हैं। उसी प्रकार तष्णातुर को कितना ही द्रव्य मिल

1. जैन तत्त्व प्रकाश श्री अमोलक मुनिजी महाराज पृष्ठ 608
2. जैन तत्त्व प्रकाश पृष्ठ- 608
3. वहीं

जाए तो उसे संतोष नहीं होता। अतः तृष्णाओं पर स्वेच्छा से अंकुश नितान्त आवश्यक है।

इस प्रकार व्रत अंगीकार नहीं करने में बाधक पाँच कारण आचार्य समन्तभद्रजी ने[1] रत्नकरण्ड श्रावकाचार में बताएं है–

अतिवाहनातिसंग्रह-विस्मय लोभातिभार वहनानि।
परिमित परिग्रहस्य च विक्षेपाः पंच लक्ष्यन्ते।। गाथा 62

अर्थात् अतिवाहन, अतिसंग्रह, विस्मय, लोभ और अतिभार वहन ये पाँच परिग्रह परिमाण व्रत के विक्षेप हैं– अन्तराय हैं।

उपर्युक्त पाँच में से एक भी प्रवृत्ति से पीड़ित व्यक्ति ऐसे अणुव्रत को अंगीकार करने में कतराता हैं। तथापि प्रत्येक व्यक्ति जीवन में ऐसे बाधक कारणों से परे रहने की ओर सदैव सजग रहे ताकि समझ में आने पर व्रत आसानी से अंगीकार कर सकें।

उपर्युक्त विवेचन की सूक्ष्मता को समझने से यह सहज ही साबित हो जाता है कि परिग्रह किस प्रकार पाप है, हिंसात्मक प्रवृत्ति है, समस्याओं का ढ़ेर है अतः अहिंसात्मक समाधान रूप परिमाण– संक्षेप करना ही आवश्यक है जो मानव को 'संतोषी सदा सुखी' बनाता है।

संतोष रूपी धन अन्तरंग परिग्रहों पर विजय प्राप्त कर बाह्य परिग्रह को सीमित करता है, अतः अन्तरंग परिग्रह पर अंकुश कर पाना ही समस्याओं पर कुठाराघात करना हैं। मूर्च्छा पर आधिपत्य पाने में जैसे-जैसे कदम आगे बढ़ते जायेंगे वैसे वैसे अहिंसा की परिधि में प्रवेश गहरा होता जायेगा व समस्याओं के बादल हटते चले जायेंगे।

आवश्यकता की अति होना अथवा आवश्यकता का न होना इस कोटि में आने वाली आवश्यकताओं को निरस्त कर देना चाहिए। आवश्यक रूप में आनेवाली जरूरतों को भी सीमा में निर्धारित कर सात्विकीकरण के दायरे में कैद करना चाहिए।

आवश्यकताओं के पूर्ति के साधन सीमित होते है तथापि इसका उल्लंघन करने वाली आवश्यकताओं को खारिज-निरस्त कर देना चाहिए।

---

1. 'जिणधम्मो', श्री आचार्य नानेश, पृष्ठ - 676-677

उपयोगी अपेक्षा संचय, रख-रखाव, सुरक्षा हेतु जो भार हो उसकी पूर्ति का प्रयास केवल दायित्व को बढ़ाने वाला होता है, उससे दूर रहना समस्याओं का स्वमेव निराकरण हैं।

अर्थोपार्जन से प्राप्त धन के चार भाग क्रमशः (1) गृह व्यवस्था जैसे–अतिथि-संविभाग, पारिवारिक देखभाल, दान आदि। (2) स्व आश्रित द्विपद-चतुष्द के देखभाल अथवा पोषण के लिए (3) व्यापार निमित्त हेतु (4) अनागत की आशंका मुक्ति हेतु, व्यय करने चाहिए। तभी अनावश्यक संचय से परे नैतिक आचरण की मर्यादा से व्यक्ति बंधा रह सकेगा।

उपरोक्त विभागानुसार व्यय करने वाला व्यक्ति आत्मार्थ हेतु सर्वोपरि प्राधान्यता, परार्थ हेतु सापेक्षिक प्राधान्यता तथा स्वार्थ हेतु सीमित प्राधान्यता का मार्ग अपनाता हुआ अतिरिक्त संचय से परे होने का कारण चार पुरुषार्थ में से धर्म, काम, मोक्ष के साथ अर्थ का तालमेल बैठाकर स्वयं को वित्त के प्रति नैतिकता में बाँधे रखता है जो हिंसक विषमता से परे सामंजस्य की स्थिति बनाये रखता है।

अर्थ का व्यय कर वस्तु अर्जित करने से पूर्व उस वस्तु का द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव व गुण से विचार कर उपभोग का निर्णय करना चाहिए। कैसे?

द्रव्य से किन तत्त्वों के संमिश्रण से वस्तु का निर्माण हुआ? क्षेत्र से उसका निर्माण कहाँ हुआ? काल से कब हुआ? भाव से किस पद्धति से हुआ? उपयात्मक गुण से परिपूर्ण है या नहीं इन पाँच बातों की शुद्धता से पूर्ण अहिंसात्मक पद्धति को जो नहीं अपनाई जा सकती लेकिन न्यूनतम हिंसा व भाव से उस अल्पहिंसा के प्रति भी ग्लानि, मनुष्य को निश्चित रूप से एक पुरुषार्थ धर्म के लौकिक पक्ष में श्रेष्ठता लाती है जो शनैः शनैः सर्वोच्च विकास (मोक्ष) के मार्ग पर ला खड़ा करती है।

उदाहरणार्थ एक वस्तु वस्त्र है। द्रव्य से मूक प्राणियों के प्राणों के मूल्य पर फर, रेशम, चमड़े आदि घातक-हिंसात्मक पद्धति से प्राप्त घटकों से बने हुए हो, क्षेत्र से वह देश के बाहर से आयात करा कर (मुद्रा स्फूर्ति का दर बढ़ाकर) लाए हो, काल से कब तक, कितने प्रमाण में

अप्रासंगिक अनुपयोगी होने वाले है भाव से हमारे देश काल, आचार रीति-रिवाज के प्रतिकूल हो तथा गुण से समयोचित अथवा अवसर युक्त है अथवा नहीं ऐसी जाँच परख हुए बिना उसे उपयोग-उपभोग से परे रखा जाए।

समस्याओं के निराकरण में उपरोक्त बिंदुओं की प्रायोगिकता अत्यन्त हितावह हैं। अर्थ का ऐसा उपयोग ही अर्थ को पुरुषार्थ की कोटि में लाता हैं। चार पुरुषार्थ में से कोई भी पुरुषार्थ दूसरे पुरुषार्थ में बाधा उत्पन्न करे तो वह स्वयं में ही समस्याओं का पूँज हैं।

मर्यादा सीमा उल्लंघन अथवा प्रतिबंध से परे भी कुछ करने की छूट अपेक्षित होती तो जगत में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को पुरुषार्थ शब्द से अलंकृत कर, करने के लिए कहा गया न होता।

इस विवेचन से यह भी स्पष्ट होता है कि समस्याएँ जड़ से उत्पन्न ही न हो अथवा जो समस्याएँ उत्पन्न हो गई हो उन्हें यदि पुरुषार्थ की सीमान्तर्गत लाया जाए तो सुखद परिणाम समक्ष आता हैं।

(समाप्त)

यक्ष-यक्षी-प्रतिमाविज्ञान

डॉ. मारुति नंदन प्रसाद तिवारी

दिगंबर परम्परा :- प्रतिष्ठासारसंग्रह में शंखवाहन से युक्त खेन्द्र के करों के आयुधों का अनुल्लेख हैं।[1] प्रतिष्ठासारोद्धार में यक्ष के बायें हाथों में धनुष, वज्र, पाश, मुद्गर, अंकुश और वरदमुद्रा वर्णित हैं। दाहिने हाथों के केवल तीन ही आयुधों का उल्लेख है जो बाण, पद्म एवं फल हैं।[2] प्रतिष्ठातिलकम् में दक्षिण करों में वाण, पद्म एवं अरुफल के साथ ही माला (पुष्पहार), अक्षमाला एवं लीलामुद्रा के प्रदर्शन का उल्लेख हैं।[3] अपराजितपृच्छा में यक्षेश षड्भुज है और उसका वाहन खर है। यक्ष के करों में वज्र, चक्र, धनुष, बाण, फल एवं वरदमुद्रा का वर्णन हैं।[4]

यक्ष के निरूपण में हिन्दू कार्तिकेय एवं इन्द्र के संयुक्त प्रभाव देखे जा सकते हैं। यक्ष का षण्मुख होना कार्तिकेय का और दिगंबर परम्परा में यक्ष की भुजाओं में वज्र एवं अंकुश का प्रदर्शन इन्द्र का प्रभाव दरशाता है।

दक्षिण भारतीय परम्परा :- दिगंबर ग्रन्थ में षण्मुख एवं द्वादशभुज खेन्द्र का वाहन मयूर है। ग्रन्थ में केवल छह हाथों के आयुध वर्णित हैं। यक्ष के दो हाथ गोद में हैं और अन्य चार में कमान (क्रुक), उरग तथा अभय और कटक मुद्राओं का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में द्विभुज यक्ष का नाम जय है और उसके हाथों के आयुध त्रिशूल एवं

---

1. अरस्यजिननाथस्य खेन्द्रों यक्षस्त्रिलोचनः।
द्वादशोरुभुजाः श्यामः षण्मुखः शंखवाहनः।। प्रतिष्ठासारसंग्रह 5.56
2. आरभ्योपरिमात्करेषु कलयन् वामेषु चापं पविं पाशं मुद्गरमंकुशं च वरदः षष्ठेन युंजन् परैः।
वाणांभोजफलस्त्रगच्छपटलीलीलाविलासास्त्रिदृक् षड्वंक्रेष्टगरांकभक्तिरसितः
खेन्द्रोर्च्यते शंखगः।। –प्रतिष्ठासारोद्धार 3.146
3. वाणांबुजोरुफलमाल्यमहाक्षमालालीलायजाम्यरमितं त्रिदशं च खेन्द्रं।
प्रतिष्ठातिलकम् 7.18, पृ. 336
4. यक्षेट् खरस्थो वज्रारिधनुर्वाणाः फलं वरः। अपराजितपृच्छा 221.53

दण्ड है। यक्ष-यक्षी-लक्षण में द्वादशभुज यक्ष के करों में उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के समान कार्मुक, वज्र, पाश, मुद्गर, अंकुश, वरदमुद्रा, शर, पद्म, फल, स्रुक, पुष्पहार एवं अक्षमाला वर्णित हैं।[1]

यक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नहीं मिली है। राज्य संग्रहालय, लखनऊ की एक अरनाथ की मूर्ति (जे. 861, 10वीं शती ई.) में द्विभुज यक्ष सर्वानुभूति है।

(18) धारणी (या तारावती) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा :

धारणी (या तारावती) जिन अरनाथ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा में चतुर्भुजा धारणी (या काली) का वाहन पद्म है और दिगंबर परम्परा में चतुर्भुजा तारावती (या विजया) का वाहन हंस है।

श्वेताम्बर परम्परा : निर्वाणकलिका में पद्मवाहना धारणी के दाहिने हाथों में मातुर्लिंग एवं उत्पल और बायें में पाश एवं अक्षसूत्र का वर्णन है।[2] अन्य सभी ग्रन्थों में पाश के स्थान पर पद्म का उल्लेख है।[3]

दिगम्बर परम्परा : प्रतिष्ठासारसंग्रह में तारावती के करों में सर्प, वज्र, मृग एवं वरदमुद्रा वर्णित हैं।[4] अन्य ग्रन्थों में भी इन्हीं लक्षणों के उल्लेख हैं।[5] केवल अपराजितपृच्छा में चतुर्भुजा यक्षी का वाहन सिंह है और उसके दो हाथों में मृग एवं वरदमुद्रा के स्थान पर चक्र एवं फल के प्रदर्शन का निर्देश है।[6] तारावती का स्वरूप, नाम एवं सर्प के प्रदर्शन के सन्दर्भ में, बौद्ध तारा से प्रभावित प्रतीत होता है।[7]

(क्रमशः)

1. रामचन्द्रन, टी. एन., पू. नि., पृ. 206-207
2. धारणी देवी कृष्णवर्णा चतुर्भुजां मातुलिंगोत्पलान्वितदक्षिणभुजां पाशाक्षसूत्रान्वितवामकरां चेति। निर्वाणकलिका 18.18
3. त्रि. श. पु. च 6.5.99-100; पद्मानन्दमहाकाव्य परिशिष्ट–अरनाथ 19; आचारदिनकर 34, पृ. 177, देवतामूर्तिप्रकरण 7.52
4. देवी तारावती नाम्ना हेमवर्णाश्रुतर्भुजा।
सर्पवज्रं मृगं धत्ते वरदा हंसवाहना।। प्रतिष्ठासारसंग्रह 5.57
5. स्वर्णाभां हंसगां सर्पमृगवज्रवरोद्धराम। प्रतिष्ठासारोद्धार। 3.172, द्रष्टव्य, प्रतिष्ठातिलकम् 7.18, पृ. 346
6. सिंहासना चतुर्बाहुर्वज्रचक्रफलोरगाः
तेजोवती स्वर्णवर्णा नाम्ना सा विजयामता।। अपराजितपृच्छा 221.32
7. भट्टाचार्य, बी. सी., पू. नि., पृ. 139

सोने के कंगन

श्री केवल मुनि

वह सुमित्र ही है राजा को विश्वास हो गया। उसने सिपाहियों को आज्ञा दी–इस वृद्धा के साथ जाओ और जिस व्यक्ति को यह बतावे उसे आदर सहित मेरे पास ले आओ। परदेशी का सम्मान करना हमारा कर्तव्य है।

सिपाही वृद्धा के साथ चले। खोजते-खोजते सुमित्र मिल ही गया। उसे देखते ही वृद्धा चीख पड़ी–यही है, पकड़ लो दूसरे सिपाहियों ने आगे बढ़कर सुमित्र से नम्रतापूर्वक कहा–चलिए, आपको महाराज बुलाते हैं।

सुमित्र सिपाहियों के साथ चल दिया। राजा वीरांगद ने दूर से ही देखा– 'अरे यह तो मेरा मित्र सुमित्र ही है।' तुरन्त सिंहासन से उठा और उसे गाढ़ आलिंगन से बाँध लिया। दोनों बिछुड़े मित्र मिले। राजा वीरांगद ने पूछा–

–कहो, कुशल तो हो?

–आपकी कृपा से प्रसन्न हूँ।

–इस वृद्धा की पुत्री को हथिनी क्यों बना दिया?

–मैंने तो इसका भला ही किया है। अब इसका अन्नपानादि का व्यय भी न होगा–क्योंकि हथिनी बनकर वह पेड़ पत्ते खाकर पेट भर लेगी।

सुमित्र की बात सुनकर वृद्धा उबल पड़ी–इन्द्रजालिए! व्यर्थ का मजाक छोड़ो और मेरी पुत्री जैसी थी वैसी ही वापिस कर दो अन्यथा....

–अन्यथा, क्या केरेगी तू!

–नहीं तो मैं तुझे वह सबक सिखाऊँगी कि जिन्दगी भर याद करेगा।

–चोरी से ज्यादा और क्या कर लेगी?

चोरी का नाम सुनते ही वीरांगद चौंक पड़ा–सुमित्र! इस वद्धा ने क्या चुराया है?

–वही मणि, जिसके प्रभाव से वन में मैंने और आपने सुख पाया था–सुमित्र ने बताया।

राजा वीरांगद आग बबूला हो गया। उसने कड़क कर कहा–बुढ़िया! चोरी और सीनाजोरी। एक तो मेरे मित्र की मणि चुराली और ऊपर से दोषारोपण कर रही है। तुरन्त इसकी मणि दे।

बुढ़िया राजा के कोप से भयभीत होकर सुमित्र के पैरों पर गिर पड़ी। कहने लगी–परदेशी! मुझे बचाओ। मुझे बचाओं।

शरणागत चाहे शत्रु हो, चाहे अपराधी–सज्जन क्षमाकर ही देते हैं। सुमित्र ने भी वृद्धा को क्षमा कर दिया। आश्वस्त होकर वृद्धा ने घर से मँगाकर मणि सुमित्र को वापिस कर दी और सुमित्र ने उसकी पुत्री को अपने पूर्व रूप में बदल दी।

रतिसेना की पुत्री का प्रेम तो सुमित्र पर था ही। माता के दुश्चरित्र से उसे और भी घृणा हो गई। उसने सुमित्र के साथ विवाह कर लिया।

वृद्धा कुट्टिनी का न्याय समाप्त हुआ और राज सभा विसर्जित। महल में ले जाकर मित्र ने सुमित्र से शिकायत की। वीरांगद बोला–

–सुमित्र! यह कैसी मित्रता निभाई तुमने? मुझे इस राज्य के झंझट में डालकर बिना बताये ही चला गया।

–मैं भी तो अपने पुण्य की परीक्षा करना चाहता था।

–क्या-क्या किया तुमने इस बीच?

सुमित्र ने अपना पूरा वृत्तान्त सुनाया। दोनों मित्र अपने सुख-दुःख की बाते एक-दूसरे को बताते बहुत देर तक बाते करते रहे।

सत्य घटना राजा रत्नशिख को सुनाकर चतुर पुरुष बोला।

–राजन! पिता द्वारा उपार्जित और कुल-परम्परा से प्राप्त लक्ष्मी का भोग तो सभी करते हैं। किन्तु वीर वही है, उसी को संसार मान्य करता है जो अपना पराक्रम दिखाए।

राजा रत्नशिख को बात चुभ गई। मंत्रियों को उसने शासन-सूत्र दिया और अकेला ही विदेश-गमन को तैयार हो गया। मंत्रियों ने उसे रोकने का बहुत प्रयास किया। किन्तु वह माना नहीं ।

(क्रमशः)

JAIN BHAWAN PUBLICATIONS

P-25, Kalakar Street, Kolkata - 700 007, Phone: 2268 2655

English :

1. Bhagavati-sutra-Text edited with English translation by K. C. Lalwani in 4 volumes:

Vol - 1	(satakas 1- 2)	Price : Rs.	150.00
Vol - 2	(satakas 3- 6)		150.00
Vol - 3	(satakas 7- 8)		150.00
Vol - 4	(satakas 9- 11) ISBN : 978-81-922334-0-6		150.00

2. James Burges - The Temples of Satrunjaya. Jain Bhawan. Kolkata ; 1977. pp. x+82 with 45 plates — Price : Rs. 100.00
   (It is the glorification of the sacred mountain Satrunjaya.)
3. P. C. Samsukha - Essence of Jainism — Price : Rs. 15.00
   ISBN : 978-81-922334-4-4
4. Ganesh Lalwani - Thus Sayeth Our Lord, — Price : Rs. 50.00
   ISBN : 978-81-922334-7-5
5. Verses from Cidananda Translated by Ganesh Lalwani — Price : Rs. 15.00
6. Ganesh Lalwani - Jainthology — Price : Rs. 100.00
   ISBN : 978-81-922334-2-0
7. Lalwani and S. R. Banerjee- Weber's Sacred Literature of the Jains — Price : Rs. 100.00
   ISBN : 978-81-922334-3-7
8. Prof. S. R. Banerjee Jainism in Different States of India — Price : Rs. 100.00
   ISBN : 978-81-922334-5-1
9. Prof. S. R. Banerjee Introducing Jainism ISBN : 978-81-922334-6-8 — Price : Rs. 30.00
10. Smt. Lata Bothra- The Harmony Within — Price : Rs. 100.00
11. Smt. Lata Bothra- From Vardhamana- to Mahavira — Price : Rs. 100.00
12. Smt. Lata Bothra- An Image of- Antiquity — Price : Rs. 100.00

Hindi :

1. Ganesh Lalwani - Atimukta (2nd edn) ISBN : 978-81-922334-1-3 Translated by Shrimati Rajkumari Begani — Price : Rs. 40.00
2. Ganesh Lalwani - Sraman Samskriti Ki Kavita, Translated by Shrimati Rajkumari Begani — Price : Rs. 20.00
3. Ganesh Lalwani - Nilanjana, Translated by Shrimati Rajkumari Begani — Price : Rs. 30.00
4. Ganesh Lalwani - Chandan-Murti Translated by Shrimati Rajkumari Begani — Price : Rs. 50.00
5. Ganesh Lalwani-Vardhaman Mahavira — Price : Rs. 60.00

6.	Ganesh Lalwani-Barsat ki Ek Raat,	Price : Rs.	45.00
7.	Ganesh Lalwani -- Panchdasi.	Price : Rs.	100.00
8.	Rajkumari Begani-Yado ke Aine me.	Price : Rs.	30.00
9.	Dr. Lata Bothra - Bhagavan Mahavira Aur Prajatantra	Price : Rs.	15.00
10.	Dr. Lata Bothra - Sanskriti Ka Adi Shrote, Jain Dharm	Price : Rs.	24.00
11.	Prof. S.R. Banerjee - Prakrit Vyakarana Praveshika	Price : Rs.	20.00
12.	Dr. Lata Bothra - Adinath Risabdev Aur Asthapad ISBN : 978-81-922334-8-2	Price : Rs.	250.00
13.	Dr. Lata Bothra - Astapad Yatra	Price : Rs.	50.00
14.	Dr. Lata Bothra - Aatm Darsan	Price : Rs.	50.00
15.	Dr. Lata Bothra - Varanbhumi Bengal ISBN : 978-81-922334-9-9	Price : Rs.	50.00
16.	Dr. Lata Bothra - Tatva Bodh	Price : Rs.	

Bengali :

1.	Ganesh Lalwani-Atimukta,	Price : Rs.	40.00
2.	Ganesh Lalwani-Sraman Sanskriti ki Kavita	Price : Rs.	20.00
3.	Puran Chand Shymsukha-Bhagavan Mahavir O Jaina Dharma.	Price : Rs.	15.00
4.	Prof. Satya Ranjan Banerjee Prasnottare Jaina-Dharma	Price : Rs.	20.00
5.	Dr. Jagatram Bhattacharya Das Baikalik Sutra	Price : Rs.	25.00
6.	Prof. Satya Ranjan Banerjee Mahavir Kathamrita	Price : Rs.	20.00
7.	Sri Yudhishthir Majhi Sarak Sanskriti O Puruliar Purakirti	Price : Rs.	20.00

Some Other Publications :

1.	Dr. Lata Bothra - Vardhamana Kaise Bane Mahavir	Price : Rs.	15.00
2.	Dr. Lata Bothra - Kesar Kyari Me Mahakta Jain Darshan	Price : Rs.	10.00
3.	Dr. Lata Bothra - Bharat Me Jain Dharma	Price : Rs.	100.00
4.	Acharya Nanesh - Samata Darshan Aur Vyavhar (Bengali)	Price : Rs.	
5.	Shri Suyesh Muniji - Jain Dharma Aur Shasnavali (Bengali)	Price : Rs.	50.00
6.	K.C.Lalwani - Sraman Bhagwan Mahavira	Price : Rs.	25.00

इसके अलावा जैन धर्म से सम्बन्धित अन्य तीन पत्रिकाएँ :

अंग्रेजी त्रैमासिक पत्रिका	वार्षिक	500.00
ISSN 0021 - 4043	(आजीवन)	5000.00
हिन्दी मासिक पत्रिका	वार्षिक	500.00
ISSN 2277 - 7865	(आजीवन)	5000.00
बंगला मासिक पत्रिका	वार्षिक	200.00
ISSN : 0975 - 8550	(आजीवन)	2000.00

Creators of Prestigious Interiors
Established 1970

Creativity is a Modern Religion

Nahar

Architects, Interiors, Consultants

5B, Indian Mirror Street, Kolkata-700 013
Phone : 2227-5240/45, Fax : 22276356
Email Id : info@nahardecor.com

Vol XXXVIII No.09
25th Dec. 2014

TITTHAYARA

Postal Reg. No. KOL.RMS / 70/2013-15
R.N.I. 30181/77

Change yourself and change your world

Shree Jin Chandra Suriji Maharaj
Founder of **SATYA SADHNA**

SITAL GROUP OF COMPANIES

Deals in :-

- ☐ Financial Services.
- ☐ Construction of Commercial & Residential Buildings.

BIKASH SINGH CHHAJER
"Centre Point" 21, Hemanta Basu Sarani
2nd Floor, Room No.-226, Kolkata-700001
Phone: (033) 22429265/22109228
Fax: (91-33) 22429265. Mobile: 9831022577
email: sitalgroupofcompanies@yahoo.co.in